॥ श्री:॥

काशी शास्त्रार्थ

१६ नवम्बर १८६९ ई०

स्वामी विशुद्धानन्द , पण्डित बालशास्त्री जी एवं स्वामी दयानन्द के मध्य

विषय :- पुराण , प्रतीकोपासना आदि ॥

"वादे-वादे जायते तत्वबोधः"

प्राचीनकाल से ही काशी में प्रतिदिन शास्त्रसभा का आयोजन होता था।सभा में विराजमान शास्त्रमहारथी पहले शास्त्रार्थ करते थे तत्पश्चात् दक्षिणा ग्रहण करते थे।नागपञ्चमी के दिन काशी के नागकुआँ पर शास्त्रज्ञों तथा छात्रों में शास्त्रार्थ करने की परम्परा वर्तमान में भी है।
वर्तमान में भी विवाह के अवसर पर कन्या और वर पक्ष के विद्वान् परस्पर विविधोपयोगी प्रमेयों पर शास्त्रार्थ करते हैं।अब इस परम्परा का ह्रास होने लगा है।काशी चूँकि व्याकरणशास्त्र की अध्ययनस्थली तथा महर्षि पतञ्जलि की कर्मस्थली होने के कारण शास्त्रविषयक उहापोह के लिए पुरातनकाल से ही जानी जाती है।

विद्वानों की क्रीडास्थली काशी में वर्षों से ऐतिहासिक शास्त्रार्थ सम्पन्न हुऐ है।कुछेक शास्त्रार्थों को लिपिबद्ध भी किया गया है परन्तु अधिकांश प्रसिद्ध शास्त्रार्थों को लिपिबद्ध ही नहीं किया गया है।।

'वैयाकरण केशरी महामहोपाध्याय पण्डित दामोदर शास्त्री' तथा मैथिल विद्वत्वरेण्य 'पण्डित बच्चा झा' के मध्य जो अद्भुत् शास्त्रार्थ हुआ था उस अद्वितीय शास्त्रार्थ ने इतिहास में स्थान पा लिया है। इस गम्भीर शास्त्रार्थ को देखने के लिए विद्वानों के अतिरिक्त हजारों की संख्या में साधारण जनता भी सम्मिलित हुई थी।

एतदतिरिक्त काशी के उद्भट् विद्वान् 'महामहोपाध्याय पण्डित गङ्गाधर शास्त्री' तथा वल्लभसम्प्रदाय के प्रसिद्ध पण्डित प्रज्ञाचक्षु 'श्रीगट्टूलालजी' से गोपालमन्दिर में जो प्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुआ वह भी इतिहास का विषय बन गया है।इस शास्त्रार्थ में पं॰ गङ्गाधर जी को विजयश्री प्राप्त हुई थी।यह वही गट्टूलाल जी हैं जिन्होंने स्वामी दयानंद को मुंबई में वल्लभ संप्रदाय की निंदा करने पर वेदांत विषय में शास्त्रार्थ कर पराजित किया।।

काशी की प्राचीन परंपरा में ऐसा ही एक नवीन प्रसंग है:-

आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती से काशी के अनेक विद्वानों का शास्त्रार्थ हुआ था।किन्तु यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि दयानंद सरस्वती को प्रत्येक शास्त्रार्थ में पराजय स्वीकार करनी पड़ी थी भले ही आर्यसमाज के अनुयायी इस सत्य को स्वीकार न करें। शास्त्रार्थ में निःशब्द होने के बाद स्वामी दयानंद पुन: पैम्फलेट मुद्रित करवा प्रश्नों के उत्तर दे फिर से शास्त्रार्थ की मांग करते जिसे अनेकों बार शांत किया गया।

काशी के **'पंडित बालशास्त्री'** जो अपने वैदुष्य से बलात् सभी को मोहित कर लेते थे इनके साथ दयानंद सरस्वती का एक ऐतिहासिक शास्त्रार्थ हुआ था।इस शास्त्रार्थ में पं॰ बालशास्त्री जी ने दयानंद सरस्वती के 'दम्भ' को खण्ड-खण्ड किया था।

इस शास्त्रार्थ में दयानंद सरस्वती ने काशी के सभी विद्वानों और अपने अनुयायियों के मध्य अपनी पराजय स्वीकार की थी।। बालशास्त्री जी वही वेदार्थ मर्मज्ञ थे जो कर्मकांड और ज्ञानकांड दोनों में अगाध पांडित्य पूर्ण थे।इनकी प्रसिद्ध एतिहासिक घटना अति सुंदर ज्योतिष्टोम यज्ञ का आयोजन है।आयोजन के **5** दिनों ऐसा प्रतीत हुआ कि पुन: प्राचीन वैदिक संस्कृति लौट आई हो।

१९वीं शती में **'स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती'** जी ने अपने अलौकिक अगाध वैदुष्य से विद्यानगरी वाराणसी को अलंकृत किया था।महाराज ने अपनी शास्त्रीय शेमुषी तथा योगविद्या के प्रभाव से काशी के इतिहास में अपना नाम अंकित करवाया है।

इनका जन्म कान्यकुब्ज ब्राह्मणकुल में १७२० शाके(१८२०ई॰)में हुआ था।इन महायोगी का प्रभाव सार्वभौम था।उत्तर भारत के राजा-महाराजा इनके पाद्पद्मों में लोट-पोट होकर स्वयं को धन्यातिधन्य अनुभव करते थे।सरस्वती और लक्ष्मी का नैसर्गिक विरोध इनके समक्ष शान्त हो गया था।
काशीनरेश प्रभु नारायणसिंह इनके अनन्य सेवक थे।प्रण्डितप्रवर 'दुःखभञ्जन कवीन्द्र' इनके मान्य शिष्य थे।

महायोगी स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती और दयानन्द सरस्वती का एक ऐतिहासिक शास्त्रार्थ हुआ था।जिसका वर्णन करना यहाँ प्रासंगिक भी है और विद्वानों की रूचि का विषय भी अतः समासविधि से उसका उल्लेख करते हैं।दयानंद सरस्वती ने इस ऐतिहासिक शास्त्रार्थ में अपनी पराजय स्वीकार की थी।

स्वामी विशुद्धानन्दजी के जीवन की महती उपलब्धि थी स्वामी दयानन्दजी के साथ शास्त्रार्थ - विचार में विजयश्री का वरण । यह महत्त्वशाली ऐतिहासिक शास्त्रार्थ काशी में दुर्गाकुण्ड के समीपस्य राजा अमेठी के ' आनन्दबाग ' में सम्पन्न हुआ था । दयानन्द स्वामीजी का आवास इसी स्थान पर था । फलतः शास्त्रार्थ का यही स्थल था ।

समय था १९२६ वि ० सं ० की श्री स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती कार्तिक शुक्ला द्वादशी मंगलवार , तदनुसार १८६९ ई ०१६ नवम्बर । ४८ वर्षीय काशीनरेश महाराजा ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह अध्यक्ष के स्थान पर अपने १४ वर्षीय राजकुमार प्रभुनारायण सिंह के साथ विराजमान थे । उनके प्रधान सभापण्डित ताराचरण तर्करत्न भट्टाचार्य महाराज के साथ उपस्थित थे । ये तर्करत्नजी साहित्य तथा न्याय के विशेष विद्वान् थे , अनेक ग्रन्थों के प्रणेता थे तथा महाराजा के धार्मिक कृत्यों के विमर्शदाता महनीय विद्वान् थे ।

काशी की विद्वन्मण्डली की ओर से दो ही प्रतिनिधि शास्त्रार्थ के लिए चुने गये थे - मनीषी योगिराज विशुद्धानन्द सरस्वती और पण्डिताग्रणी बालशास्त्री । ४५ वर्षीय स्वामी दयानन्द वेद - विषय तथा वेदों में अनिर्दिष्ट किसी भी धार्मिक सिद्धान्त को मानने के लिए तैयार नहीं थे । उनका आग्रह था कि आजकल हिन्दू धर्म में मूर्तिपूजा , श्राद्ध आदि धार्मिक मान्यताएँ वेदविरुद्ध हैं । अतएव वे नितान्त अग्राह्य है । काशी के पण्डितों के साथ इस शास्त्रार्थ का विषय था- मूर्तिपूजा । उस सभा में काशी के मान्य पण्डितों के सग में काशी की पार्मिक जनता प्रभूत सख्या में उपस्थित थी । इस शास्त्रार्थ में सम्मिलित होने वाले चालीस विद्वानों के नाम वेदवाणी पत्रिका के प्रथम वर्ष (नवम्बर १९७० , पृ ०१५) के अङ्क में दिये गये है वे यथार्थ हैं । ये पण्डित उस समय काशी में निवास कर रहे थे । पण्डितों के अतिरिक्त काशी के प्रख्यात रईस तथा कवि भारतेन्दु बाबू हरिपया अपने अनुज गोकुलचन्द्रनी के साथ सभा में उपस्थित थे । काशी के बाहर के कुछ मान्य सन्त थे । यह तो सब ठीक है , परन्तु जनता की उपस्थिति ६० हजार लिखी गई है - यह कुछ अत्युक्ति - सी प्रतीत हो रही है।
काशीवासियों में इस शास्त्रार्थ की विशेष चर्चा थी ही ।

शास्त्रार्थ का संक्षिप्त विवरण
समय- अपराह्न कार्तिक सुदी १२, स ० १९२६ ।

स्थान आनन्द बाग , दुर्गामन्दिर के समीप (वाराणसी) ।

दयानन्द स्वामी ने कहा:- कि आप वेदों की पुस्तक लाएं हैं या नहीं?

इसपर महाराज जी ने कहा:- पंडितों को सभी वेद कंठस्थ हैं अत: पुस्तकों का क्या प्रयोजन है?

इसपर दयानन्द स्वामी ने कहा:- कि बिना पुस्तक पूर्वापर प्रकरण का विचार ठीक ठीक कैसे हो सकता है पुस्तकें नहीं लाए तो सही परंतु आज किस विषय पर विचार होगा?

पण्डितों ने उत्तर दिया:- शास्त्र कंठस्थ होना स्वाभाविक है। पूर्वापर प्रसंगों का ज्ञान भी कंठस्थ होने पर हो जाता है अस्तु आप मूर्तिपूजा का खंडन करते हैं हम लोग उसका मंडन करेंगे।

काशीनरेश ने अपने सभापण्डित ताराचरण तर्करन को आदेश दिया कि शास्त्रार्थ आरम्भ कीजिए। मैं भी वादी तथा प्रतिवादी के कथनों का सारांश समझ कर पक्षपातशून्य होकर विचार को सुनने के लिए सावधान बैठा हूँ।

श्रीताराचरण तर्करत्न :- {बोलने के लिए उद्यत होते हैं}

स्वामी दयानंद:- आप वेदों को प्रमाण मानते हैं या नहीं?

ताराचारण नैयायिक जी:- जो वर्णाश्रम में स्थित हैं,वह वेदों को प्रमाण मानते ही हैं।

स्वामी दयानंद :- प्रतिमापूजन वेद में कहाँ लिखा हुआ है?उत्तर एक ही व्यक्ति एक ही बार दें।

ताराचरण :- केवल वेद ही प्रमाण हैं और कुछ(स्मृतिपुराणेतिहासादि) प्रमाण नहीं हैं इसमें क्या प्रमाण है?

स्वामी दयानंद :- वेद में जो नहीं मिलता है,अप्रमाण ही है,वह कथमपि प्रमाण नहीं है।।

ताराचरण :- ऐसा क्यों? अर्थात् जो वेद में न मिले ,परन्तु स्मृतिपुराणादि में उल्लिखित हो,उसे प्रमाण क्यों न माना जाऐ?इनके न मानने में क्या प्रमाण है?

स्वामी दयानन्द :- वेदविरूद्ध वस्तुओं का प्रमाण नहीं है।

ताराचरण :- आपके इस कथन में क्या प्रमाण है?

स्वामी दयानंद :- इस कथन में प्रमाण है श्रुति एवं मनुस्मृति।

ताराचरण :- उसी को बताईऐ।जो वेदमन्त्र वेदातिरिक्त स्मृतिपुराणेतिहासादि के प्रामाण्य का निषेधक है,उसे कहिए।अथवा मनुस्मृति का वह श्लोक ही कहिए जिसमें यह तथ्य प्रतिपादित है।

स्वामी दयानंद :- प्रामाण्य विचार आगे होगा।सम्प्रति प्रस्तुत वेद विचार कीजिऐ।

ताराचरण :- कैसा वेदविचार करना चाहते हो?
वेद के नित्य-अनित्यत्व का विचार अथवा वेद की प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता का विचार?

स्वामी दयानंद :- पत्थर की प्रतिमा का पूजन वेद में कहा है या नहीं? यह विचार करना चाहिऐ।

ताराचरण :- वेद के समान स्मृत्यादि का प्रामाण्य भी हमें स्वीकृत है।पुराणादिकों में प्रतिमापूजन का विधान है।तब प्रतिमा पूजन शास्त्र से सम्मत सिद्ध हो ही जाता है।

दयानंद स्वामी :- हम स्मृति तथा पुराण का प्रमाण नही मानते।वेद से अतिरिक्त प्रमाण नही होते।

ताराचरण :- वेदविरूद्ध क्या है? स्मृति,इतिहासादि तो वेदविरुद्ध नहीं है। तब वेदविरुद्ध किसे कहते हैं आप?

दयानंद स्वामी :- जो वेद में नही है वह वेदविरुद्ध ही है।

ताराचरण :- यह वेद का कथन है अथवा श्रीमान् जी का कथन है।

इसपर स्वामी दयानंद चुप हो गए।

बालशास्त्री :- वेद में अनुक्त वस्तु अप्रमाण है इस कथन में हेतु क्या है स्वामी जी।?इसका विचार आरम्भ में करना चाहिऐ

दयानंद स्वामी :- श्रुतिस्मृत्यादि का मूल वेद है।मनु,कात्यायन महाभारत आदि इसके प्रमाण हैं। जिस प्रकार मन्त्रादिकों का तथा वेदान्तमीमांसा के सूत्रों का मूल वेद है, उसी प्रकार प्रतिमा पूजन का मूल वेद में दिखाईऐ।

पण्डित ताराचरण :- मनुस्मृति का वेदों में मूल ज्ञात है तो बताइए?

दयानंद स्वामी:- "यद्वै किंचन मनुरवदत्तद् भेषजम् यह सामवेद में कहा गया है।

स्वामी विशुद्धानन्द :- क्या बारम्बार आप कहते हैं कि वेदान्तसूत्रों का मूल वेद है। यदि यह बात है तो बताईऐ **"रचनानुपपत्तेश्च नानुमानं प्रमाणं"** इस ब्रह्मसूत्र(२•२•१) का मूलभूत वेद कहाँ है?

इसपर दयानंद स्वामी ने प्रकरण भिन्न बात होने का प्रसंग दिया विशुद्धानंद जी ने कहा कि यह प्रकरण विरुद्ध नहीं,यदि आपको ज्ञात हो तो अवश्य बताइए। इसका उत्तर स्वामी दयानंद स्वामी से नही दिया गया।उन्होंने स्वीकारा का मुझे सब वेद कण्ठस्थ नही है और मैं इसका उत्तर नहीं दे सकता,पुस्तक देख कर कहा जा सकता है.

इसपर विशुद्धानंद जी ने कहा:- कि जो कंठस्थ नहीं है तो काशी नगर में शास्त्रार्थ करने को क्यों उद्यत हुए हो?

इसपर स्वामी जी ने कहा :- कि क्या आपको सब कंठस्थ है।

विशुद्धानंद जी ने कहा:- हाँ,हमे सब कंठस्थ है।

अब स्वामी दयानंद स्वामी विशुद्धानन्द को कहते हैं -" यदि आपको सब उपस्थित है तो धर्म का लक्षण बताईऐ।"

स्वामी विशुद्धानंद:- वेदप्रतिपाद्य: प्रयोजनवदर्थो धर्म इति। वेदप्रतिपाद्य फलसहित अर्थ ही धर्म कहलाता है।

स्वामी दयानन्द:- यह आपका संस्कृत है इसका क्या प्रमाण है कुछ श्रुति स्मृति कहिए

स्वामी विशुद्धानन्द :- "**चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः**" मेरा कथन इस जैमिनी सूत्र पर आधारित है।

स्वामी दयानंद :- धर्म के दश लक्षण हैं। मनु ने लिखा है- "धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयः•••••••••

ताराचरण :- ये दसों धर्म के लक्षण थोड़े ही हैं, ये तो अनुमापक हेतु हैं।

दयानन्द स्वामी क्रुद्ध होकर विशुद्धानन्द जी की ओर मुड़कर बोले -" आप बताओ स्वामी धर्म में कौन श्रुति है?यह चोदना नाम प्रेरणा का है वहां भी श्रुति वा स्मृति कहना चाहिए।।

स्वामी विशुद्धानन्द :- "अग्निहोत्रं **जुहोत्यादि**" श्रुतिया हैं।

इस पर स्वामी दयानंद चुप हो गए और विशुद्धानंद जी ने कहा:-

घटं भित्त्वा पटं छित्त्वा कृत्वा रासभरोहणम् ।

येन - केन- प्रकारेण प्रसिद्ध : पुरुषो भवेत् ।।

अर्थात् घडा फोड़कर , कपडे फाड़कर गधे पर चढ़कर येन - केन प्रकारेण व्यक्ति (मूर्ख) प्रसिद्ध होना चाहता है

बालशास्त्री जी भी धर्म लक्षण की चर्चा में सम्मिलित होने के उद्धृत होने को थे उन्होंने कहा**:** हां हमने सभी धर्मशास्त्र देखा है।

स्वामी दयानंद **'-** अच्छा तो आप अधर्म का लक्षण कहिए।।

बालशास्त्री जी**:-** **दुर्दिष्टजन्यत्वं अधर्मत्वमिति।**
स्वामी दयानंद चुप हो गए।

फिर पंडितों ने पूछा कि क्या वेद में प्रतिमा शब्द है या नहीं**?**

स्वामी दयानन्द**:-** प्रतिमा शब्द तो है।

पंडित**:-** अच्छा यदि है तो कहां पर है और फिर उसका खण्डन किस प्रकार करते हो**?**

स्वामी दयानंद**:-** "प्रतिमा पूजन का वेद में कहीं विधान नहीं है।सामवेद के केवल एक मन्त्र में प्रतिमा का निर्देश है**,**परन्तु वह भूलोक की बात न होकर ब्रह्मलोक की बात है**"।**

ब्रह्मलोकपरक होने की बात कहने पर बालशास्त्री ने आपत्ति उठाई- "आप जैसा तात्पर्य समझ रहे हैं वैसा तात्पर्यार्थ नही निकलता।
आपके दिए शब्द में अन्वावर्तन शब्द आया है।इसका अर्थ है-"अनु**=**अनुलक्ष्यीकृत्य आवर्तनम्**"।**
अर्थात् जब ब्रह्मलोक में उपद्रव हो तो उसके लिए शान्ति करनी चाहिऐ। कहाँ**?** इस मर्त्यलोक में ही तो।

बालशास्त्री **:~** ब्रह्मलोक में कौन शान्ति करेगा**?**

स्वामी दयानन्द **:~** स्वर्गादि लोक में इन्द्रादि देवता हैं या नहीं**?**

स्वामी विशुद्धानन्द **:~** देवता मन्त्रात्मक होते हैं। इन्द्रादि देवता तत्तत् मन्त्रस्वरूप ही हैं**,**उनका देह नही होता तब शान्ति करेगा ही कौन**?**

इस पर दयानन्द स्वामी ने उपासना की बात उठाई।

स्वामी दयानंद **:~** उपासना ऐसे देवता की कैसे होती है**?**

स्वामी विशुद्धानन्द **:~** प्रतीकोपासना होती है।वेद की सहस्राधिक शाखाऐं हैं उन्हीं किसी में यह यह रहस्योद्घाटन हुआ है।
अच्छा ये बताईऐ वेद अपौरुषेय हैं तब इनका प्रवर्तक कौन है**?**

स्वामी दयानंद **:~** वेदों का प्रवर्तक ईश्वर ही है।

स्वामी विशुद्धानन्द **:~** किस प्रकार के ईश्वर में वेद रहते हैं "नित्य ज्ञान विशिष्ट ईश्वर में **?"** "योगसिद्ध क्लेशादि शून्य ईश्वर में**?"**अथवा "सच्चिदानन्द ईश्वर में **?"**
और ईश्वर का वेदों से क्या संबंध है**?** प्रतिपाद्यप्रतिपादकभाव**,** जन्यजनकभाव**,** समवायसम्बन्ध**,** स्वस्वामिभाव या फिर तादात्म्य सम्बन्ध**?**

इस पर दयानंद स्वामी मौन रहे।
फिर विशुद्धानंद जी ने कहा**:- मनो ब्रह्मेत्युपासीत"** आदि वचन भी वेदों में देखने को आते हैं**,**वैसे ही शालिग्राम पूजन में क्यों ग्रहण नहीं हो सकता।

दयानन्द स्वामी:- "पाषाणादि ब्रह्मेत्युपासीत" इत्यादि वचन तो वेदों में नहीं है फिर क्यों इसका ग्रहण हो।

इसपर सभी कहने लगे कि एक और तो जड़ मन के उपासना पद्धति में सहायक होने का अनुमोदन कर रहे हैं किन्तु दूसरी और शालिग्राम का निषेध शास्त्रमूलक होने पर भी।

अब पुराण विषय पर शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ।

दयानंद स्वामी **:~** पुराणों मे ही म्लेच्छभाषा अध्ययन का निषेध है। वेद में कहाँ है बताईऐ**?**

बालशास्त्री बोले **:~ " न म्लेच्छतवै नापभाषितवै "**

अर्थात् म्लेच्छ भाषा न बोलें न अपशब्द कहें - यही वैदिक वाक्य का प्रमाण है।महाभाष्य प्रथम आह्निक में भी इसका उल्लेख है।

विशुद्धानन्द जी ने अर्थविस्तार किया।

दयानंद स्वामी ने किसी विषय पर प्रमाण खोजने हेतु काशीनरेश से वेद की पुस्तक लाने को कहा।

काशीनरेश बोले -"पण्डितों को सब कण्ठस्थ ही है, पोथी की क्या आवश्यक्ता?

अब पुराणों की वैदिकता का प्रसंग उपस्थित हो गया।

विशुद्धानंद जी:- **महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्, यद्दग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासपुराणम्"** यह सब जो बृहदारण्यक में पठित है वह प्रमाण हैं या नहीं।

दयानन्द स्वामी:- हां प्रमाण है

विशुद्धानंद जी:- इसका प्रमाण है तो सबका प्रमाण आ गया।

दयानंद स्वामी:- सत्य श्लोकों का ही प्रमाण होता है अन्य का नहीं।

स्वामी विशुद्धानंद:- यहां पुराण शब्द किसका विशेषण है?

इसपर दयानन्द स्वामी ने पुस्तक मंगाई।

माध्वाचार्य जी ने वचन पढ़ा:- "ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानीति"

दयानंद स्वामी:- पुराण शब्द ब्राह्मण का विशेषण है अर्थात पुराने नाम सनातन ब्राह्मण हैं।

बालशास्त्री आदि ने हंसकर कहा कि क्या ब्राह्मण भी नवीन होते हैं?

दयानंद स्वामी ने कहा'- नवीन ब्राह्मण नहीं है,परंतु ऐसी शंका न हो इसलिए यह विशेषण कहा गया है।।

स्वामी विशुद्धानन्द :-इतिहास शब्द का व्यवधान होने से कैसे विशेषण होगा? वेद में साक्षात् रूप से भी 'पुराण' शब्द प्रयुक्त है-

"आजाह्वे ब्राह्मणानीतिहासान पुराणानि कल्पं गाथा नाराशंसीमेवाहु"।

आपने यहां 'पुराणानि' को 'ब्राह्मणानि' का विशेषण ही माना है,स्वतन्त्र विशेष्यपद नहीं,मध्य में व्यवधान होने से यह दूरान्वय है।अतएव यह विशेषण नही हो सकता।

स्वामी दयानंद :- व्यवधान कोई हानि नहीं करता -

"अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे"।
यहाँ दूरान्वय तथा व्यवधान होने पर कोई क्षति नही है।

स्वामी विशुद्धानन्द :- इस वाक्य में सब शब्द विशेषणपद हैं,विशेष्य पद के अभाव में वहां व्यवधान नहीं है।

दयानंद स्वामी :- "ऋग्वेदं विजानाति••••••इतिहासपुराणः। इस छान्दोग्य श्रुति में भी पुराण विशेषण ही है।

स्वामी विशुद्धानन्द :- आपने जो कहा यह पाठ शुद्ध नहीं है, पाठ है " इतिहासः पुराणम्"।
'पुराणं' इतिहास का विशेषण हो ही नहीं सकता।
क्योंकि यदि यह विशेषण होता तो, विशेष्य का समानलिङ्गी होता।
पुलिङ्ग 'इतिहास' शब्द का विशेषण होने पर 'पुराण' को भी 'पुराणः' पुल्लिङ्ग ही होना चाहिऐ 'पुराणम्' नहीं।

सभी सभासदों ने विशुद्धानन्द जी की बात का समर्थन करते हुऐ कहा - "यह पाठ साधु नहीं है"।

स्वामी विशुद्धानन्द जी के इस कथन पर स्वामी दयानंद आत्मविश्वास से गरजते हुऐ बोले-

स्वामी दयानंद :- "इतिहासपुराणः" इत्येवमेव पाठः इति।
चोचेत् मत्पराजयः, अन्यथा युष्माकं पराजय इति लिख्यताम्।

अर्थात् 'इतिहासपुराणः' यही पाठ है। यदि 'इतिहासः पुराणम्' निकल आवे तो मेरी पराजय।
यदि ऐसा न निकले तो आप लोगों की पराजय- इसे लिख लो।

पंडित पाठ ढूंढने चले गए

दयानन्द जी:-"आपने तो व्याकरण भी बहुत पढ़ा होगा तो बताईऐ- 'कल्म' संज्ञा किस की होती है?"

इस पर वैयाकरण बालशास्त्री जी झट से बोले -

"पतञ्जलि के महाभाष्य में एक स्थान पर परिहास में ही कल्म संज्ञा कही गयी है।परन्तु यह प्रकृत संज्ञा नहीं है।"
आप अप्रकृत की चर्चा क्यों करते हैं?
प्रकृत विचार है पुराणों के वेदविरूद्धता तो इसी पर विचार कीजिऐ न।अन्य चर्चा की आवश्यकता ही क्या?

इस पर अचानक माध्वाचार्य जी ने शतपथब्राह्मण के अश्वमेध प्रकरण का वह अंश दिखलाया जिसका अन्तिम अंश है-

"तानुपदिशति पुराणं वेदः सोऽयमिति।
किञ्चित् पुराणमाचक्षीत।
एवमेवाध्वर्युः सम्प्रेषयति।
न प्रक्रमान् जुहोति।।

'पुराणं वेदः' इस पाठ को देखकर दयानंद स्वामी ग्रन्थ का पन्ना अपने हाथ में लेकर उलट-पुलट कर बहुत देर तक देखते हुए मौन होकर लौटा दिऐ।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपनी पराजय स्वीकार की। सभी पण्डित लोग जय जयकार कर अपने स्थानों में जाने को तैयार हुए।
यह ऐतिहासिक शास्त्रार्थ यहीं पूर्ण हो गया।।।।

आर्य समाजी टिप्पणियों का खण्डन:-

**1'- ***युधिष्ठिर मीमांसक ने "व्याकरण महाभाष्य" की भूमिका में काशी के पंडितों का "कल्म संज्ञा" विषय में उत्तर न देना कहा है किन्तु शास्त्रार्थ के "दयानन्द निर्वाण शताब्दी" संस्करण मे संज्ञा के विषय में किंचित चर्चा का भाग जोड़ तदुपरांत माध्वाचार्य जी का पत्र लाया जाना लिखा है। ऐसी स्थिति में एक ही छोटी संस्था के भीतर कितना विरोधाभास है आप देख सकते हैं।सुविधानुसार शास्त्रार्थ के अंश जोड़ना घटाना ऐसा करते हुए समाजी अनेकों

बार पकड़े गए हैं। सत्य तो यह है कि कल्म संज्ञा बता अप्रकृत विषय की चर्चा करने का बाध पंडितो द्वारा किया गया था। युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा ऐसी अनेक कल्पनाएं घर बैठ कर की गई है।

2:- दयानंद निर्वाण शताब्दी संस्करण में **"**भिन्न पाठ निकलने पर **5** क्षण में दयानंद द्वारा उत्तर देना कहा है**"** किन्तु **"**इतिहासपुराणः**"** इत्येवमेव पाठः इति।चोचेत् मत्पराजयः**,** अन्यथा युष्माकं पराजय इति लिख्यताम्**"** यह तो उसमें भी उपस्थित है। पाठ भिन्न आ गया तो पराजय हो गई**,5** क्षण का क्या प्रयोजन**?** सत्य यह है कि स्वामी दयानंद ने कोई उत्तर नहीं दिया यही बात विरजानन्द प्रेस से प्रकाशित सत्यार्थ प्रकाश के अनुवाद में लिखी गई है कि स्वामी दयानंद ने वहां पर कोई उत्तर नहीं दिया अपितु कुछ दिनों बाद पैम्फलेट छपवाए।**(**प्रमाण फोटो**)**

AN

English Translation

OF THE

SATYARTH PRAKASH

Literally: Exposé of Right Sense (of Vedic Religion),

OF

MAHARSHI

SWAMI DAYANAND SARASWATI,

"The Luther of India,"

BEING

A Guide to Vedic Hermeneutics

BY

Durga Prasad
Preacher of Vedic Religion,
EDITOR, *Harbinger*, LAHORE.

VIRJANAND PRESS, LAHORE.

First Edition 1000 Copies } 1908 { Price Per Copy Rs 2, 4s. or $ 1.
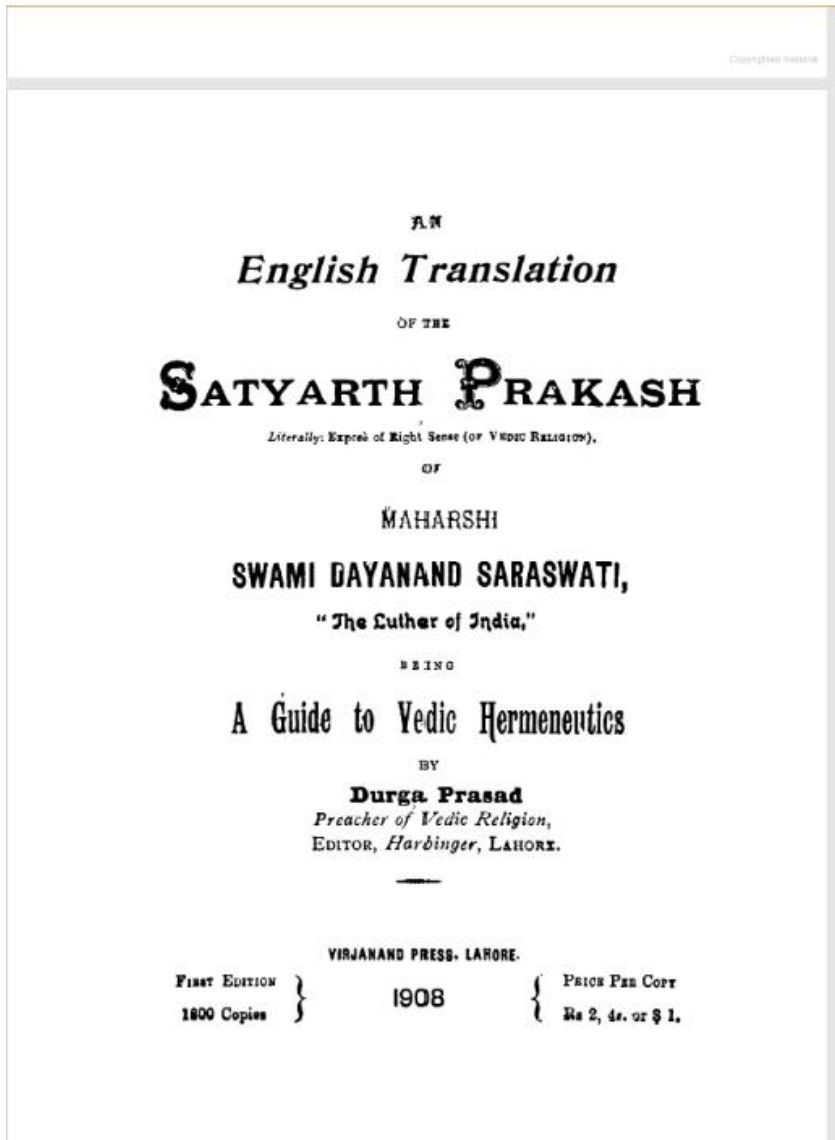
Vedas as the authority. When this had been agreed to, he requested Taracharan to produce passages from the Vedas sanctioning idolatry, *pashanadipujana* (worship of stones, &c). Instead of doing this, Taracharan for some time tried to substitute proofs from the Puranas. At last Dayanand happening to say that he only admitted the Manu Smriti, Sharirak Sutras, &c., as authoritative, because founded on the Vedas, Vishudhanand, the great Vedantist, interfered, and quoting a Vedant Sutra from the Sharirak Sutras asked Dayanand to show that it was founded on the Vedas. After some hesitation Dayanand replied that he could do this only after referring to the Vedas, as he did not remember the whole of them. Vishudhanand then tauntingly said if he could not do that, he should not set himself up as a teacher in Benares. Dayanand replied that none of the pandits had the whole of the Vedas in his memory. Thereupon Vishudhanand and several others asserted that they knew the whole of the Vedas by heart. Then followed several questions put by Dayanand to show that his opponents had asserted more than they could justify. They could answer none of his questions. At last some pandits took up the thread of the discussion again by asking Dayanand whether the term *pratima* (likeness) and *purti* (fulness) occurring in the Vedas did not sanction idolatry. He answered that, rightly interpreted, they did not do so. As none of his opponents objected to his interpretation, it is plain that they either perceived the correctness of it, or were too little acquainted with the Vedas to venture to contradict it. Then Madhavacharya, a pandit of no repute, produced two leaves of a Vedic MS. and, reading a passage * containing the word "Puranas," asked to what this term referred. Dayanand replied it was there simply an adjective, meaning "ancient," and not the proper name. Vishudhanand, challenging this interpretation, some discussion followed as to its grammatical correctness; but, at last, all seemed to acquiesce in it. Then Madhavacharya again produced two other leaves of a Vedic MS. and read a passage † with this purport, that upon the completion of a *yajna* (sacrifice) the reading of the Puranas should be heard on the 10th day, and asked how the term "Puranas" could be there an adjective. Dayanand took the MS. in his hands and began to meditate what answer he should give. His opponents waited but two minutes, and as still no answer was forthcoming, they rose, jeering and calling out that he was unable to answer and was defeated, and went away. The answer, he afterwards published in his pamphlet.

As it (that passage) is out of a Brahmana of the Sama Veda, which contains many modern additions, its value would after all be not much in the eyes of non-Hindus, and, I suspect, even of Dayanand; for, he once admitted to me that the Brahmanas did contain modern interpolated portions, and that any passage sanctioning idolatry was to be considered as such, a spurious portion.

He went several times to Benares that the pandits might have no excuse left in preparing themselves for discussion with him. Though he had refuted their present religion in public lectures, yet they durst not confront him in defence of their creed. As it was a custom with him always to give a notice to the people wherever he went, inviting them to discuss with him to ascertain the true religion, it

* ब्राह्मणानीतिहासा: पुराणानि

† यज्ञसमाप्तौ सत्यां दशमे दिवसे पुराणानां पाठं श्रणुयात

3:- निर्वाण शताब्दी एवं अन्य संस्करणों में एक प्रलाप यह भी है कि "दयानंद **6** बार काशी आए थे किन्तु कोई शास्त्रार्थ के लिए सामने नहीं आया" सत्य यह है कि दयानंद स्वामी को अपनी पराजय का अत्यंत दुख था इस कारण वह किसी भी प्रकार से इसकी क्षतिपूर्ति चाहते थे,वह चाहते कि पुन: बालशास्त्री आदि से वाद वितंडा आदि करके स्वयं का सम्मान बचाएं। इस कारण ही १९३७ में जब स्वामी दयानन्द कर्नल आल्ट के साथ काशी आए तो राजा शिवप्रसाद जी ने उनसे प्रश्न पूछ लिखित वार्ता की मांग की।थीबो साहब ने इस विषय में दयानंद को पराजित घोषित किया है(फोटो प्रमाण)|| राजा साहब की बातों का दो बार के भ्रमोच्छेदन नामक पत्र व्यवहार में

उत्तर न दे पाने के कारण राजा शिवप्रसाद के लिए नेत्र फूट गए हैं, श्वान के समान,पागल, लकड़पना, बधिर आदि शब्द प्रयोग किए, एवं राजा जी से शास्त्रचर्चा के स्थान पर विशुद्धानंद और बालशास्त्री जी से शास्त्रार्थ की जिद करने लगे। कुल मिलाकर प्रयोजन यही था कि अपना बीता सम्मान वापस लाया जा सके किन्तु काशी के पण्डितो ने सफल नहीं होने दिया।ऐसा भी नहीं है कि वाद बढ़ाने का प्रयास नहीं हुआ "दयानंद पराभूति" "दुर्जनमुखमर्दन" ,"अबोध निवारण"(अंबिकादत्त व्यास से भिन्न) आदि ग्रंथ पंडितों ने लिखे। भारतेंदु हरिश्चंद्र जी ने भी दूषण मलिका लिख शास्त्रार्थ की मांग की। अत: एक बार पराजित होने के उपरांत भी बार बार बहाने बनाकर हार छिपाने का प्रयास कहां तक उचित है?

Dayanand Sarassvati is the authoritativeness of the several parts of what is commonly comprised under the name "Veda." Dayanand Sarassvati rejects the Brahmanas and Upnishads [with one exception] and acknowledges the authority of the Sanhitas only. As this procedure is not in agreement with the religious belief of the Hindus of the present day as well as of past ages of which we have records, Dayanand Sarassvati is bound to produce convincing proofs for the validity of the distinction he makes. He mentions that the Sanhitas are "ईश्वरोक्त" while the Brahmanas and Upnishads are merely "जीवोक्त"; but how does he prove this assertion? (for as it stands it cannot be called anything but a mere assertion). The assertion of the Sanhitas being स्वतःप्रमाण while the Brahmanas and Upnishads are merely परतःप्रमाण can likewise not be admitted before it is supported by arguments stronger than those which Dayanand Sarassvati has brought forward up to the present. Raja Sivaprasad is right to ask "why should not both be स्वतःप्रमाण if one is so?" or again "why should not both be परतःप्रमाण if one is so?" and this reasoning could certainly not be employed by any one for proving that other non-vedic books as well are to be considered equal to the Veda; for the Veda alone [including Brahmanas and Upnishads] enjoys the privilege of having—since immemorial times—been acknowledged by all Hindus as sacred and revealed books.

With regard to the passage quoted by Dayanand Sarassvat from the Satapatha Brahmana (Bribadaranyaka Upanishad) it must be admitted that the objection of Raja Sivaprasad is well-founded; if one part of the

(२२)

passage is authoritative, the other part is so likewise. The assertion whether the whole passage is a **वाक्य** or a **वाक्य समूह** is wholly irrelevant to the point at issue.

Dayanand Sarassvati has certainly no right to declare the passage from Katyayana—according to which the Veda consists of Mantra and Brahmana—oninterpolation. Acting in this way anybody might declare any passage contrary to his pre-conceived opinions an interpolation.

Dayanand Sarassvati rejects the authority of the Brahmanas. How then does he prepare to deal with Brahmana portions of the Taittiriya Sanhita, which in character nowise differ from other Brahmanas, like the Satapatha, Panchavinsa, &c. And on the other hand does he reject all the mantras contained in the Taittiriya Brahmana ?

G. THIBAUT.

4:- बिना विजय के ही काशी शास्त्रार्थ के **100** वर्ष पूर्ण होने पर आर्य प्रतिनिधि सभा ने आर्यमित्र पत्रिका में **"100** वर्षों से कोई मूर्ति पूजा सिद्ध नहीं कर पाया,काशी में पंडितो की पराजय हुई" जैसी गप्पें लगाना प्रारंभ किया। **100** वर्षों में अनेक बार आचार्यों से यह शास्त्रार्थ में पराजित हो चुके हैं,अनेकों पुस्तकों में इनके खंडन उपलब्ध हैं, जिनका प्रत्युत्तर अभी तक नहीं आया। ऐसी स्थिति में लालबिहारी मिश्र जी ने पत्रिका छपवा आर्य समाजियों में वितरित की एवं उनसे इस विषय में प्रमाण मांगे। कोई भी प्रमाण नहीं उपलब्ध करा सका।

आर्य समाजियों ने जगह जगह जाकर शास्त्रार्थ करने का निश्चय भी किया था करपात्री जी उन दिनों काशी में थे आर्य समाजियों की विज्ञप्ति का जब उन्हें पता लगा तो उन्होंने चुनौती स्वीकार कर कहा कि हम तो काशी में ही हैं

हमसे शास्त्रार्थ करने आइए।कोई भी आर्य समाजी शास्त्रार्थ के स्थल में नहीं आया अपितु उन्होंने अपने ही समूह के भीतर प्रचारित करने के लिए धूर्तता से " हमे करपात्री जी की चुनौती स्वीकार है" नामक विज्ञप्ति छपवाई, किन्तु भय से शास्त्रार्थ करने नहीं आ सके,इसका उत्तर सनातनी पक्ष की और से दिए जाने पर भी आर्य समाजियों ने कुछ उत्तर नहीं दिया। अत: यह ऊंठ के विवाह में गधों के गान के समान "विजय शताब्दी" मनाना सभ्य व्यक्तियों का लक्षण नहीं हो सकता। असत्य,कुटिलता,धूर्तता आदि मलेच्छो के गुण हैं।।।

॥ श्रीहरि: ॥

काशी शास्त्रार्थ

स्वामी दयानन्दसरस्वती की करारी हार

सौ वर्ष पश्चात् भी दयानन्दपंथी निरुत्तर

आर्य प्रतिनिधि सभा, उ. प्र. के मुखपत्र 'आर्यमित्र' (२१/१/७०) के मुखपृष्ठ पर छपा है--"म. दयानन्द सरस्वती ने १८६९ में काशी के उच्चविद्वानों से अकेले मूर्तिपूजा वेदविरुद्ध है, इस विषय पर शास्त्रार्थ करके सब पंडितों को परास्त किया था... इसी शास्त्रार्थ की यह शताब्दी मनाई गई थी। अब सौ वर्ष पश्चात् भी कोई वेदों में मूर्तिपूजा सिद्ध न कर सका।"

आर्य समाज किस तरह मिथ्या प्रचार किया करता है इसका यह ताजा उदाहरण है। झूठी बातें गढ़कर जनता को धोखे में डालना अच्छा काम नहीं है।

काशी के राजा श्रीशिवप्रसाद सितारेहिंद से स्वामी दयानन्द सरस्वती की हार हुई थी। इस संबंध का 'थीबो' साहब का लेख आज भी विद्यमान है (जिसकी चर्चा मैंने

पहली टिप्पणी में कर दी है)। इसी तरह काशी के दूसरे विद्वान् आधुनिक हिंदी के जनक भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र ने "दूषण-मालिका" लिखकर स्वामी दयानन्द सरस्वती से लेखबद्ध शास्त्रार्थ की माँग की थी जिसका समुचित उत्तर वे न दे सके और यह पुस्तक आज भी चुनौती बनी बैठी है।

इस तरह काशी के इन दो विद्वानों को ही जब दयानन्द सरस्वती न जीत पाये तब पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा, नव्य न्याय, नव्य व्याकरण आदि के मूर्तिमान रूप बालशास्त्री

इस तरह काशी के इन दो विद्वानों को ही जब दयानन्द सरस्वती न जीत पाये तब पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा, नव्य न्याय, नव्य व्याकरण आदि के मूर्तिमान् रूप बालशास्त्री आदि जैसे गुरुजनों से स्वामी दयानन्द सरस्वती क्या टक्कर लेते। स्वामीजी तो इन विषयों का क-ख भी नहीं जानते थे। यही कारण है कि काशी शास्त्रार्थ में स्वामी दयानन्दजी की पग-पग पर हार होती रही।

प्रसिद्ध नैयायिक पं. ताराचरणजी के तर्क ने ऐसा आश्चर्यजनक कार्य किया कि उसके चक्कर में पड़कर स्वामीजी अपनी ही मान्यताओं को एक-दो प्रश्नों के उत्तर में अपनी ही बात से काट बैठे। ऐसी विकट हार कम देखने को मिलती है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती का प्रश्न था–"मूर्तिपूजा वेद में कहाँ लिखी है?" पं. ताराचरणजी का तर्क था–"केवल वेद प्रमाण है, और कुछ (स्मृति आदि) प्रमाण नहीं; इसमें क्या प्रमाण?" बस दो ही उत्तर-प्रत्युत्तर के बाद स्वामीजी को कह देना पड़ा–"महाभारत और मनुस्मृति प्रमाण हैं"। ताराचरणजी ने पूछा–"महाभारत या मनुस्मृति का वह कौन-सा वचन है जो केवल वेद को ही प्रमाण मानने का आदेश देता है, अन्य को नहीं?"। स्वामी दयानन्दजी कोई प्रमाण प्रस्तुत न कर

सके, बिल्कुल निरुत्तर हो गये। स्वामीजी की यह करारी हार थी। यदि स्वामीजी वेद का या मनु का कोई वचन प्रस्तुत कर देते, जिससे यह सिद्ध होता कि केवल वेद ही प्रमाण है, उसके अतिरिक्त और कुछ प्रमाण नहीं; तब ताराचरणजी के लिए आवश्यक हो जाता कि मूर्तिपूजा में वेद का प्रमाण प्रस्तुत करें। परंतु स्वामीजी कोई वचन प्रस्तुत न कर सके। अब सौ वर्ष पश्चात् भी पं. ताराचरणजी के उक्त प्रश्न का उत्तर उनके अनुयायी भी न दे सके। ताराचरणजी के तर्क ने यहाँ मनु तथा आगे चलकर कात्यायन, महाभारत आदि का प्रामाण्य स्वयं दयानन्द सरस्वती से कहला कर स्पष्ट कर दिया कि वेद की प्रामाणिकता के लिए जब मनुस्मृति और महाभारत को स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रमाण मान बैठे तो उन प्रमाणों से मूर्तिपूजा तो सिद्ध ही है। इस तरह मूर्तिपूजा का विवाद ही समाप्त हो गया।

शास्त्रार्थ शताब्दी समारोह के अवसर पर दयानन्द-पंथियों की ओर से एक विज्ञप्ति निकाली गयी थी, जिसका उत्तर "दयानन्दपंथियों की विज्ञप्ति का उत्तर"-शीर्षक विज्ञप्ति में दिया गया था। आजतक उसका कोई उत्तर नहीं हुआ। दूसरे पत्र में संस्कृत पद्यों में शास्त्रार्थ की प्रक्रिया के संबंध में उल्लेख था। उसका उत्तर आजतक दयानन्दपंथी नहीं दे सके। यदि उक्त विषयों के उत्तर देने का प्रयास दयानन्दपंथी आज भी करें तो लिखित शास्त्रार्थ आगे बढ़े। उनकी चुप्पी उनकी हार बताती है। वेद में मूर्ति-पूजा का वर्णन है।

लालबिहारी मिश्र
विद्वत्परिषद्, काशी
(गोयनका संस्कृत महाविद्यालय)

5:-ऐसे ही अनेक शास्त्रार्थ स्थलों पर आर्य समाजियों ने व्यर्थ के प्रसंग मिश्रित किए हैं**,**कहीं प्रसंग काटे भी हैं।अपने कथन में अपूर्णता रह जाने पर टिप्पणी में भी व्यर्थ का प्रलाप किया है सनातनी विद्यार्थी आसानी से ऐसी गलतियों को छांटकर अलग कर सकते हैं। अस्तु

।।इति शिवम्।।